समर्पण

उन नौनिहालों को—

जिनके मनोरंजन के लिये ही ये पंक्तियाँ लिखी गई हैं।

—केसरी

आमुख

'आम-महुआ' में मेरी बालोपयोगी किंवा किशोरोपयोगी रचनाओं का संकलन हुआ है। इनमें ज्यादा ऐसी ही रचनाएँ हैं जिन्हें मैंने जान बूझकर बालकों के लिए लिखा है; कुछ ऐसी भी हैं जो हलकी-फुलकी होने के कारण ही इस संकलन में प्रवेश पा सकी हैं।

बाल-मनोविज्ञान का पंडित मैं अपने को नहीं मानता। किन्तु एक बात जानता हूँ; और वह यह कि बालक ऐसी ही रचनाएँ पसंद करते हैं जो वे स्वयं लिखना चाहते हैं, किन्तु अनुभवहीनता किंवा अध्ययनाभाव के कारण लिख नहीं पाते। मतलब कि बालोपयोगी कविताओं में बाल-सुलभ कल्पनाओं एवं भावनाओं का ही समावेश हो तो वे ज्यादा उपयोगी सिद्ध होंगी।

बालकों के लिए जो कविताएं आए दिन लिखी जा रही हैं, वे साधारणत: दो श्रेणियों मे विभक्त की जा सकती हैं। एक वे जो प्रधानत: नीति-परक या उपदेश-परक होती हैं; दूसरी वे जो मूलत: बाल-मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी जाती हैं। वस्तुत: पहली श्रेणी की रचनाएँ दूसरी श्रेणी की रचनाओं से बहुत ज्यादा देखने को मिलती हैं। मैंने भी उपदेश-परक रचनाएँ लिखी हैं। किंतु जब कभी मैंने ऐसी रचणाएँ लिखी हैं, मेरी कल्पना ने मेरी आँखों के आगे एक विद्रूमय चित्र खींच दिया है। वह चित्र कुछ ऐसा है—

'मैं व्यासासन पर आसीन एक विद्या-वयोवृद्ध ज्ञान-विदग्ध आचार्य हूँ। चारों ओर शिष्य-मंडली जुटी है, जो गुरुजी से केवल उपदेश सुनने ही की आशा कर सकती है। कुछ तो मेरा उपदेश सुनकर श्रद्धावनत हो कर लौटते हैं कुछ ऊबे-खीझे-से! एक नटखट-सा वचनपटु वटु व्यंगपूर्ण मुस्कान के साथ धीरे से बोल उठता है—'पर उपदेश चतुर बहुतेरे'?

यह सत्य है कि उपदेशक-कवि के प्रति बालक-पाठक की श्रद्धा चाहे जितनी भी गहरी हो किंतु उसका प्रेम तो उस कवि के प्रति ही जागृत होगा जो अपनी कविताओं के माध्यम से उनकी दुनिया में पहुँच कर उनका संगी बन जाता है। ऐसी कविताएँ लिखना आसान नहीं है, किंतु ऐसी कविताएँ ही सचमुच बालोपयोगी कही जायँगी।

और ऐसी कविताओं के प्रणयन में उस सत्य को ग्रहण करना होता है जिसपर विश्व का समस्त बाल-साहित्य आधारित है। 'हितोपदेश' एवं 'एशप्स फेबुल्स' के रचयिताओं ने जिस सत्य के आलोक में अपनी कहानियाँ लिखी थीं, वही एकमात्र सत्य आज भी बालकों को सच्चा आनंद दे सकता है। जिस सत्य को ढकने के लिए हमारे ज्ञानभीरु साहित्यशास्त्रियों ने 'अन्योक्ति', 'रूपक' तथा 'प्रतीकवाद' प्रभृति नाम आविष्कृत किए हैं उसके सात्विक प्रकृत रूप को बालकों की आस्था निस्संकोच कर लेती है। इसीलिए मैं यह 'आम-महुआ' अपने प्रिय बालकों को कोरी अन्योक्ति के रूप में समर्पित नहीं कर रहा हूँ। वे भाई आम और बहन महुआ के दिव्य स्नेहालाप को उन कानों से सुन लेंगे जो उनको सबसे बहुमूल्य भगवान की देन है और जिन्हें अभी यह दुनिया कतर नहीं पाई है।

१६-८-५४
समस्तीपुर

—केसरी

विषय-सूची

आम-महुआ

जिस दिन निज जादू-भरी उगलियों से वसंत ने उन्हें छुआ
जिस दिन अनजान कहींसे नस-नस में उनकी रस-कलश चुआ
उस दिन गुदगुदी मची जो वह वन-मुकुल खिली डाली-डाली
हो गये पुलक से लोट-पोट वे भाई-बहन आम-महुआ

❀ ❀ ❀ ❀

बचपन से ही भाई-रसाल मनमौजी बड़ा रसीला था
वह छैल-छबीला फैल फैल छतनार सुडौल गठीला था
इमली कटहल की बात कौन, वह कुछ न समझता जामुन को-
पर महुआ-बहिनी के हित उसका दिल सनेह से गीला था

पर बड़ी लजीली थी महुआ मीठी-मीठी भोली-भाली
घूँघट में सदा छिपी रहती उसके नयनों की मधु-प्याली
जब-जब आता दक्षिण-समीर करने उससे रस की बातें—
यह सौम्य खड़ी रहती, निराश, वह मुड़ जाता खाली-खाली

वह रसिया-भाई आम रात-दिन करता रहता रँगरलियाँ
उसकी मखमली सेज बैठी पंचम में गातीं कोइलियाँ
मर्-मर् गाता समीर हर-हर देता वह पत्तों से ताली
इस होड़ा-होड़ी में गुंजित रहती थीं वनिका की गलियाँ

पर जानें क्यों महुआ उदासी-सी रहती सदा मलीना-सी
उतरे हैं जिसके तार अरे! उस धुनी सुर-हीना वीणा-सी
नीलम की एक अँगूठी-सा वह भाई-आम प्रकृति कर में
क्यों धूमिल महुआ बहन, जड़ी जो उसमें एक नगीना-सी
जिस दिन परन्तु मादक अँगुलियों से वसंत ने उन्हें छुआ
जिस दिन अनजान कहीं से नस-नस में उनकी रस-कलश चुआ
उस दिन तो फूट पड़ा दोनों के जिगर पुलक का एक उभार
हो गये मुकुल से लोट-पोट वे भाई-बहन आम-महुआ

❀ ❀ ❀ ❀

भाई ने कहा, 'आज तो मन चौधवीं रात-सा फूल रहा
तेरे सुकुमार गले महुआ मोती का गजरा झूल रहा
मेरी अनमनी बहन! अब भी तो हँसी-खुशी दो दिन कर ले
री देख, कि तेरी डाल-डाल प्यारा वसंत अनुकूल रहा

मैं राजा बना पहन सिर पर यह कनक-किरीट-मुकुट हीरा
नवलखा हारवाली रानी तू !—मेरी प्यारी हमशीरा
हम राजा-रानी, आज हमारा नव-अभिषेक मनायेंगे—
ये नगर-निवासी, कुंज-विलासी खग-मृग कर मंगल क्रीड़ा
ले देख कि करती मधुप-मंडली मेरी सुयश-भटैती है
कर लेगी विश्व-विजय ऐसी मंजरियों की कमनैती है
मेरे सिंहासन तले पाद-पूजन को मेरी प्रभुता के—
उमड़ी अभिलाषी मानव की रे आस-हुलास-मनौती है'

यों कह रसाल ने चूम लिया महुए को उसे रिझाने को
उस लाज-भरी के दिल निज छवि की नाज-अदा उकसाने को
पर कठिन अरे नारी-चरित्र दुर्बोध रहस्य विधाता का—
कैसे कोई जाने, हँसना भी होता उन्हें रुलाने को

'भैया रसाल!' मुख से महुए के ये दो शब्द कढ़े ज्यों ही
टप-टप पृथ्वी पर गिरीं अश्रु-बूँदें दृग से उसके त्यों ही
'भैया! हम सचमुच धन्य, मिली हमको ऐसी गरिमा-सुषमा
मैं सोचा करती हूँ, परन्तु क्या यह निधि लुट जाये यों ही

प्रभुता का पालन! आह, मधुर कितनी यह शान-बान भैया
यह छवि सिंगार नवलखाहार जिनपर मोहा जहान, भैया
मैं सोचा करती हूँ, परन्तु कुछ अर्थ न इनका क्या जग में—
इस सुख की स्वर्ण-सरी तिरती क्या यों ही यह जीवन नैया

मैं जान गई वह अर्थ बंधु! उस दिन तुरंत दुपहरिया में
आँचल में थोड़ा सा सत्तू थोड़ा जल लिये गगरिया में
आई जब बड़ी उमंग-भरी वह कृषक-छोकरी भोरी-सी
मैंने वह अर्थ लखा, भैया! उसकी रीती टोकरिया में

मैं दे दूँगी नवलखाहार, मैं दे दूँगी अपना सुहाग
मैं दे दूँगी इस तृषित विश्व को अपना अमृत का तड़ाग'
तब राशि-राशि मोती महुए के द्वार लगे लुटने निशिदिन
कितनी टोकरियाँ भरीं, हुईं कितनी छोकरियाँ बाग-बाग
यह देख सदाव्रत त्याग बहन का वह रसाल भी सकुचाया
'मैं भी कुछ दूँ जग को'—उर में उसके अनुराग उमड़ आया
'तुझसी बहिनी के योग्य बनूँ भाई कैसे बतला, महुआ
कल्याणी! तेरा उर-प्रकाश मेरे अंतरतम में छाया'

'राजा रसाल ! भैया रसाल ! यह ताज तुम्हारा सोने का
यदि तुम चाहो तो बन सकता है जग के कोने-कोने का
नव अमृत-घट—अन्यथा एक आडम्बर-भर प्रभुता का यह
दो क्षण का छवि-आकर्षण—इससे जग का क्या कुछ होने का

तुम ऐसा फलो कि जगती की तकदीर तुम्हीं में फूल जाय
इस एक-एक मंजरी मध्य अनगिनत टिकोरे झूल जायँ
राजा रसाल यह नाम तुम्हारा तब सार्थक होगा जग में—
जब डूब तुम्हारे रस सागर मानव त्रिकाल दुख भूल जायँ'

❀ ❀ ❀ ❀

तब राजेश्वर रसाल सोने का मुकुट छोड़ फलवान हुआ
घर-घर में गाँव-गाँव खेरे आशा का स्वर्ण-बिहान हुआ
वह धन्य बहन बड़ भागिन जग में जिसके शुचि उपदेशों से—
रस में भूला, मद में झूला अल्हड़ भाई मतिमान हुआ

बालक वसंत

मैं भोला-भाला शिशु वसंत हूँ प्यारा
मेरी छवि से दीपित दिगंत यह सारा

मैं हँसता हूँ तो झरते फूल झराझर
मैं हँसता ही रहता अतएव बराबर
मेरी साँसों में उमड़ा मधु का सागर
मैं इसे उँड़ेल रहा गागर-पर-गागर

कोकिल मेरा ही कंठ सुधा की धारा
मैं भोला-भाला शिशु वसंत हूँ प्यारा।

मैं लता विटप का हूँ श्रृंगार सलोना
पृथ्वी की गोदी का मनभावन छौना
मेरी मुसकाहट खिली जभी, जिस क्षण में
मरु भी परिणत हो गया तभी कंचन में

किसलय की मेरी सेज सुघर मखमल सी
फूलों की झालर लगी जहाँ झलमल सी
मेरा पलना तरु-वल्लरियों की डाली
मधु-मुकुल नवल मेरी शरबत की प्याली
रंगिनी पंखिनी मुझे सुनाती लोरी
तितली मेरी संगिनी प्रेम-रस-बोरी
सुख के सपनों की दुनिया का मैं वासी
मुझको न चाहिये पतझड़ और उदासी

आनंद मुझे बस चिरानंद है प्यारा
मैं भोला-भाला शिशु वसंत हूँ प्यारा

बालकों की ओर से

हम सरल निश्छल तुम्हारे बाल हैं सुकुमार
हम न इस नरमेध के भगवान्! जिम्मेवार

आग की भठ्ठी बना यह जल रहा संसार
हाय! यह किस दानवी का फल रहा व्यापार
फूल-सी सुन्दर बनी थी मानवों की देह
और उनकी छाँह को शीतल सुहावन गेह
अब निशाने भर रहे ये देह-गेह अचूक
चल रही इन पर सदा बन्दूक-पर-बन्दूक

हम सरल निश्छल तुम्हारे बाल हैं सुकुमार
हम न इस नरमेध के भगवान्! जिम्मेवार

हम रचेंगे एक नूतन प्रेम का संसार! हम न…

तुम हमें दो जब प्रभो! तारुण्य का वरदान
ज्ञान दो पहले कि हम इन्सान हैं इन्सान

दो न प्रभुता, बस हमें दो प्रीति मैत्री-मेल
हम न गिरि, बस तिल रहें हम भरित तैल-फुलेल
शक्ति दो, पर दो न वे विष में भिगोये तीर
छेदते बेपीर जो असहाय की तकदीर
फोड़ दो वह लोभ का पापी सुनहला भांड
है मचा जिसके लिये यह क्रूर लंका-कांड
बल हमें दो, जीतकर हम यह घृणा-विद्वेष
कर सकें फिर स्वर्ग-सा यह पुण्य भारत देश
दो हमें जब जाति का, निज धर्म का अभिमान
ज्ञान दो पहले कि हम इन्सान हैं इन्सान
हो चरण में हे प्रभो! यह प्रार्थना स्वीकार
हम तुम्हारे सरल निश्छल बाल हैं सुकुमार

तारों की बात

केवल हँसना केवल हँसना

सीखा हमने बस हँस-हँस कर सबके दिल-आँखों में बसना

प्रतिपल खुल-खुल, प्रतिपल खिल-खिल
नव दीपक-से झिलमिल-झिलमिल
हम नभ के लाख-लाख बच्चे
हँसते रहते हिलमिल-घुलमिल

एक काम हँसना फिर हँसना
फिर हँसने के लिये तरसना
दुखियारी आँखों-सी काली
जब आती अँधियाली रातें
बुझ जाता शशि का दीप
उमड़ती अमा लिये दुख की घातें

उस दिन हम भी नभ के आँगन
प्रतिपल खुल-खुल, प्रतिपल खिल-खिल

हँसते रहते, घटती न हमारी दुख में भी सुख की बातें
सीखा इन बतीसियों ने नित अँधियाले में और विलसना

केवल हँसना, केवल हँसना

ओ मानव के शिशु ओ! तुम भी तो किलक-पुलक गुद-गुदी लिये
हम-से तुम भी तो रोम-रोम में राशि-राशि आनन्द पिए
हम नभ में, तुम पृथ्वी में; हम ऊपर, तुम नीचे भूल गये
अन्यथा एक आनन्द-विटप के हम दोनों दो फूल नये

हम दोनों का संसार एक हम दोनों का व्यापार एक
इस जग के तप्त मरुस्थल में हम सावन की बौछार एक
हम दोनों इस बेजार नगर में हँसने का विश्वास एक
हम दोनों इस मिस्मार डगर में बसने की अभिलाष एक

'जीवन की जय, सिरजन की जय' हो हम दोनों की एक टेक
'हँसने की जय, बसने की जय' शाश्वत हममें यह हो विवेक

———

जागो नूतन !

मैंने देखा आज प्रात में—वर्ष वृद्ध हो काँप रहा है
साँस कुहा बन छाई इसकी—थक जैसे यह हाँफ रहा है
गर्म रक्त अब है न नसों में बर्फ बन गया बहता पानी
सब छवि पीकर चली गई है जेठ मास की चढ़ी जवानी
इस अपंग के अंग-अंग के बंधन ढीले कमर झुक रही
बस, दो क्षण पीले पत्रों में ये सूखी हड्डियाँ रुक रहीं
फिर भी देखा मंद-ज्योति इसकी आँखों में हास भरा है
शिशिर-जड़ित पलकों के भीतर सपने-सा मधुमास भरा है
चाहे जैसा भी अतीत हो यह भविष्य को ताक रहा है
यह विश्वास-फलक के ऊपर भावी की छवि आँक रहा है
वह भावी विद्वेष घृणा की जिसमें ज्वालामुखी न होगी
जिसमें अपना ही लोहू पी मानवता यह सुखी न होगी
वह भावी जिसकी नैया का शिशुओ ! तुम पतवार बनोगे
वह भावी जिसके मंदिर के शिशुओ ! तुम मेमार बनोगे
तुमको कर्म-तपस्या का यह देकर शुभ-संदेश जा रहा
जागो नूतन ! वर्ष पुरातन चिर-सुषुप्ति के देश जा रहा

धरती माता

आई ऋतु शरद् बनी धरती मीठी माँ-सी कल्याणी है
अंचल में लिये सुहाग दृगंचल में अनुराग-कहानी है

है दूध-पूत से गोद भरी यह मोद-भरी मतवाली है
फूलों से लदी हुई इसके जीवन की डाली-डाली है
तुम देखो तो इसका आँगन—क्या एक इंच भी खाली है ?
हैं लाख-लाख शिशु खेलरहे किस माँ ने यह छवि पाली है ?

ये गेहूँ-बूँट-मटर-जौ के अंकुर ही अभी निकल पाए
पर इस शोभा पर अरे मर्त्य क्या स्वर्ग-छटा भी बलि जाए

ये मुरझ न जायँ, अभी तो ये कोमल रेशम के डोरे हैं
इसलिये बड़े भोरे ही माँ भर लाती अमिय-कटोरे हैं

ऐसा ही माँ का प्यार, लसलसी मिट्टी भी सुकुमार बनी
माँ के सनेह में भींग किरण बच्चों का मोती-हार बनी

यह नन्हें शिशुओं की छवि,है फिर धानों की सुघराई पर
माँ लोट-पोट है मधुवन के उन मोहन कुँवर-कन्हाई पर

ये दूल्हे बने हुए किशोर सब की आँखों में जड़े हुए
हरियाले जोड़े-जामे पर हल्दी के छींटे पड़े हुए

है राशि-राशि झालर जिसमें वह मौर शीश पर झूल रहा
पियरी पर किरण-हार चंपक-कलियों की नाईं फूल रहा

लो, माँ का घर सूना कर धन-खेतों से यह बारात चली
भूखी संसृति में बँटने को धरती की यह सौगात चली
बजती मंगल शहनाई है उर-उर खुशियाली छाई है
सबके घर में धन-धान्य सभी के मुख पर लाली आई है

दे जग को अपना अंचल-धन धरती माता मुसकाती है
हँस-हँस कर यह निज पुत्रों के सिर बलि का मौर चढ़ाती है

मानव के शिशु ! समझो, जग में होता है मंगल-गान जहाँ
ध्रुव किसी वीरसू जननी का होता सुहाग-बलिदान वहाँ

———

हे शिशु

तुम सुख-दुख दोनों में सुन्दर
तुम दुख में प्रिय सुख में प्रियतर

तुम मानव-जीवन की छवि हो
ज्यों अंधकार में दीप-शिखा
इस जग में एक तुम्हीं कवि हो
तुमने बस सुख का गीत लिखा
तुम तितली-सा मधुवन-वासी
मादक मधु-गंध मरंद पिये
तुम हो वसंत-सा उल्लासी
नव-जीवन का आनन्द लिये

तुम शिशु-काया में शिव-शंकर
तुम सुख-दुख दोनों में सुन्दर

तुम हो प्रभु की करुणा भींगी
ऐसे अनूप सोना-चाँदी—
जो बँटी बराबर घर-घर में
कोई रानी हो या बाँदी
तुम समदर्शी जैसे दिनकर
तुम सुख-दुख दोनों में सुन्दर

तुम किसलय का मर्मर-हर-हर
तुम सुख-दुख दोनों में सुन्दर

बस, रोने को ही ज्ञान मिला
दुख बोने को अभिमान मिला
तुम धन्य अरे भोले! तुमको
नादानी का वरदान मिला
तुम सुखकर ज्यों चंदन-हिमकर
तुम सुख-दुख दोनों में सुन्दर

प्रार्थना

आज इस त्योहार में यह प्रार्थना हमारी
माँ ! हमें वर दो कि हों हम शक्ति के पुजारी

आज हम जिस देश की आशा-भरी संतान
चाहिये उसको अनेकों सबल निर्भय प्राण
प्राण वैसे—जो जलें ज्यों ग्रीष्म-ऋतु का भानु
प्राण वैसे—जो बलें ज्यों घृत-प्रदीप्त कृशानु

हों हमारे प्राण वैसे आज तेज-धारी !
माँ ! हमें वर दो कि हम हों शक्ति के पुजारी !!

हम न हों सुकुमार या लाचार या निरुपाय
हम न हों केवल खिलौने सुघर या असहाय
हम बनें नर-सिंह जिसकी सुन प्रबल हुंकार
मत्त पशु-बल में सकल संसार यह थर्राय

बल हमें हो, पर न हो वह बल किसीका शूल
बल हमारा हो न निर्बल के कभी प्रतिकूल
किन्तु हम निर्बल न हों हम हों बली निःशंक
है हमें धोना युगों का पाप-शाप कलंक

आज इस त्योहार में यह प्रार्थना हमारी !
माँ ! हमें बल दो कि हम हों शक्ति के पुजारी !!

चैत में

तू अमराई मैं भँवरा !!

हे चिर-सुन्दर ! तू चैत मास की अमराई-सा सँवरा !
तू अमराई मैं भँवरा !!

मैंने देखी है आज बाग में आमों की सुघराई
टहनी-टहनी पर राशि-राशि मंजरियों की चिकनाई
मधु में, पराग में, सौरभ में भँवरे डूबते-नहाते
ऐसी शोभा की उमड़-घुमड़ उन कुंजों में घिर आई

भँवरों के मीठे गान वाण हैं स्नेह-सिक्त अलबेले
जो उगा रहे उकसा-उकसा आमों में मधुर टिकोले
मानव का हास-लास उमड़ा इनके गुंजन-गायन में
ये भँवरे जग की सुख-समृद्धि के चारण चतुर फबीले

वैशाख की दूब

चींटियों की पाँत-सी हैं बढ़ रही,
देख लो, ये दूब की मृदु डालियाँ
लग रहीं मानो धरा के होठ से,
प्यार से लबरेज नीलम प्यालियाँ

इंच या दो इंच में फैलाव है
किन्तु सीमाहीन इनका चाव है
बढ़ रहीं ये द्रौपदी के चीर-सी
हौंस का कैसा बढ़ाव-चढ़ाव है !

ग्रीष्म से झुलसी धरा की देह पर-
मधुर मरहम-सी उँगलियाँ फेर कर
पूछतीं मानो गजब अपनाव है—
'जननि, अब कैसा तुम्हारा घाव है'

देख लो कैसा हरा यह बाग है
उमड़ता सा एक तरल तड़ाग है
इंच या दो इंच के इस गात में-
त्याग या कितना बड़ा अनुराग है!

आ गया वैशाख का यह मास है
अब बिदा ही ले रहा मधुमास है
अब न इठलाती कहीं मैदान में
मद भरी नीलम परी-सी घास है!

खेत हैं सुनसान केवल खूँटियाँ
कटे जौ-गेहूँ अनाजों की खड़ी
देख लो मानो अहल्या शाप से
धूल में पत्थर शिला-सी है जड़ी!

और फूलों की कथा क्या पूछते
अब न मधु मकरंद मलय-बतास है
फिर कहो ठंढक कहाँ से आयगी
खो चुकी धरती सभी विश्वास है

किन्तु देखो दूब की ये डालियाँ
बढ़ रहीं-नित हरित-भरित हुलास हैं
कह रहीं मानों धरा से गर्व से—
'माँ बुरे दिन हम तुम्हारे पास हैं।'

बढ़ रहीं ये खूब दूब-दुलारियाँ
गढ़ रहीं ये सजल श्यामल क्यारियाँ
ये बचा लेंगी तपन के ताप से
मेदिनी को धन्य ये सुकुमारियाँ

देख लो किस रूप में ये छा रहीं
क्या अनूप छटा निराली पा रहीं
उस तरफ देखो कि किस अंदाज से
उमड़ती काली घटा वह आ रही

इस तरफ मंजुल शिविर-सी तानकर
है खड़ी कोई अनूठी नाजनी
उस तरफ मानो विवर का ध्यान कर,
लोटती-सी जा रही है नागिनी

एक अपनी ही लटों के भार से,
भूमि पर गिरती सरकती जा रही
दूसरी निज अंग-अंग उभार से,
एक क्षण में लचक लाखों खा रही

एक लघु-लघु चरण के संचार से
नाप लेना चाहती मैदान को
राह में ढेले कि टीले कुछ पड़े
जीत लेगी यह सभी व्यवधान को

और वह धरती जहाँ परती पड़ी
समुद ये स्वच्छन्द उसमें फिर रहीं
बन रहा वह खेत सरपट ताल-सा
हंसिनी-सी ये उसीमें फिर रहीं

एक बच-बच टेढ़-मेढ़ घुमाव से
जा रही तिरछे लजाई-सी बड़ी
जानती वह पास के उस खेत में
शूल सी आँखें बबूलों की कड़ी

और देखो तो, वहाँ वे कौन हैं,
जो खड़ी सीधी पकड़ पगडंडियाँ
कर रहीं स्वागत तुम्हारा वे सभी,
ले हरी-नीली-बैंगनी झंडियाँ

ओ बटोही ! यदि तुम्हारे पाँव में
पड़ गये फोले तपी उस रेत में
देख लो, मृदु लेप चंदन का लिये,
दूब प्यारी है खड़ी इस खेत में

देर या कि अबेर हो जाये भले
किन्तु तुम दो क्षण ठहरकर घूम लो
चरण की ही चाह इनको है सदा,
किन्तु तुम इनको उठाकर चूम लो

ये बड़ी भोली सलोनी बेटियाँ,
आँख की पुतली धरा की श्यामली
एक रस आनन्द और विषाद में
त्याग में अनुराग में ये बावली

किन्तु यह भी सोच लो इनके लिये,
आज भी है रस धरित्री के हिये
दूब-सी संतान हो जिस गोद में
स्वर्ग भी क्या चीज है उसके लिये ?

———

जेठ की सरिता

देख लो वह बह रही है जेठ की सरी !

चिलचिलाती धूप, जलते खेत हैं
यह बवंडर है कि कोई प्रेत है
लू-लपट से जल गई हरियालियाँ
भूमि सारी एक सरपट रेत है

पैर में छाले अधर काले पड़े
प्राण में दो बूँद के लाले पड़े
रे पथिक ! किस पाप-किस अभिशाप से-
हाय ! तुम यों जेठ के पाले पड़े

किंतु अब भी दे रही है आँख में तरी।
देख लो यह बह रही है जेठ की सरी !!

तुम नहा लो तुम जुड़ा लो प्राण-मन
तुम चुला लो कंठ में दो अमृत-कण
तुम चढ़ा लो आँख पर सर पर उसे
वह धवल पिघला तरल चंदन सघन

और इस उजड़े हुए मैदान में
एक ही वह लोक-सेवा में रमी
तुम डुबा लो कलश कितने ही न क्यों
पर न होगी इस सदाव्रत में कमी

यह महा दुर्दिन कठिन है दुपहरी खरी!
देख लो वह बह रही है जेठ की सरी !!

हो चुका आनंद भी अब मौन है
गीत गा ले विहग ऐसा कौन है ?
मलय या मकरन्द की कथा पूछते
छार या अंगार ढोता 'पौन' है

किंतु धारा एक करुणा प्यार की
इस भयानक दाह में भी बह रही
वह सरी जीवन-भरी अनुराग की
त्याग की मोहक कहानी कह रही

आग में भी गा रही है वह इन्द्र की परी!
देख लो वह बह रही है जेठ की सरी !!

आषाढ़

यदि तुम कुछ बनना चाहो तो आषाढ़ बनो •

देखो लाया आषाढ़ सुखद
मीठी-मीठी पहली फुहार
धरती पर सुधा-धार नभ के
प्राणों में वंशी की पुकार
सुख की पुकार, छवि की पुकार
नूतन सिंगार, नूतन बहार
उर-उर रिमझिम पुर-पुर रिमझिम
रिमझिम दिन-रैन हजार बार

तुम भी रिमझिम तुम भी छवि-सुख की बाढ़ बनो
यदि तुम कुछ बनना चाहो तो आषाढ़ बनो

देखो, कितना लेकर सुहाग
आषाढ़ महीना आता है

यह गिन-गिन कर पृथ्वी के
झुलसे बाग-तड़ाग सजाता है
यह चुन-चुन कर सूखे रूखों को
सींच-सींच पनपाता है
यह उजड़े जगत् बीच नवयुग का
मंगल शंख बजाता है

जिसके बजते नवजीवन का
कण-कण अंकुर उग आता है
जिसके बजते दुनिया की
किस्मत का किवाड़ खुल जाता है
तुम भी जग की किस्मत का खुला किवाड़ बनो
यदि तुम कुछ बनना चाहो तो आषाढ़ बनो।

यदि तुम में उमड़-घुमड़ हो तो
आषाढ़-सदृश छा जाओ ना
जग की आँखों में अंजन-सी
बदली बनकर छितराओ ना
वन-उपवन की डाली-डाली पर
हरियाली बरसाओ ना
तुम सेंतमेंत में खेत-रेत में
मोती-थाल लुटाओ ना

यों ही लुटने-मिटने की चाह प्रगाढ़ बनो
यदि तुम कुछ बनना चाहो तो आषाढ़ बनो।

सावन और तुम

मुझको जैसे लगते हो तुम वैसा ही लगता है सावन

तुम दोनों बड़े सलोने हो
तुम दोनों छवि के छौने हो
जग की आशा जिस पर सोती
तुम दोनों वही बिछौने हो

तुम दोनों हो भावी के धन तुम दोनों नूतन के धावन
मुझको जैसे लगते हो तुम वैसा ही लगता है सावन

तुम दोनों बड़े उमंगी हो
तुम दोनों सुख के संगी हो
तुम दोनों को सब हैं समान
कोई ब्राह्मण या भंगी हो

तुम दोनों ऊँच-नीच सबके आँगन की रिमझिम मनभावन
मुझको जैसे लगते हो तुम वैसा ही लगता है सावन

तुम दोनों हो छवि की बदली
तुम दोनों हो कवि की कजली
जीवन-वसंत जो रही खोज
तुम दोनों वही दीप-बिजली

तुम दोनों लोक-लोचनों की पुतली साँवली सजल पावन
मुझको जैसे लगते हो तुम वैसा ही लगता है सावन

हम पाप-पंक में गड़े हुए
विद्वेष-घृणा से सड़े हुए
तुम दोनों बरस रहे हम पर
बस इसीलिये हम खड़े हुए

बह जाय कीच-काई जिससे, तुम दोनों लाओ वह प्लावन
मुझको जैसे लगते हो तुम वैसा ही लगता है सावन

भादों में

ऋतुओं में पावस प्यारा है!

छवि है उसमें इसलिये नहीं—इसलिये कि वह रस-धारा है!

ऋतुओं में पावस प्यारा है!!

कोरी छवि भी कोई धन है?

यदि ऐसा हो तो नन्दन-वन—

से भी सुन्दर पलाश-वन है!

पर गंधहीन किंशुक पर कब, भँवरे ने तन-मन वारा है?

ऋतुओं में पावस प्यारा है!

केवल बनाव - शृंगार नहीं

केवल शोभा-संभार नहीं

सौन्दर्य बिना परमार्थ-वृत्ति के

जग को है स्वीकार नहीं

कब सलिल-हीन बादल से इस पृथ्वी को मिला सहारा है?

ऋतुओं में पावस प्यारा है!

सोचो, तुझ-सा ही पावस यदि
बालों को खूब सँवार चले
गालों को खूब निखार चले
अपनी ही मस्ती में भूला
दुख भरी पुकार बिसार चले
अपनी ही छवि को मुग्ध-चकित-चित
बार हजार निहार चले
जब एक बूँद के लिये रटा करता चातक बेचारा है
युग-युग का वह पथ-हारा है।

वह पावस जो बलिदान करे
हँस कर रो कर कल्याण करे
अपने को कर निःशेष
जगत् के तन-मन में उत्थान भरे
जिसने निज बिंदु-बिंदु से जग के सुख का सिंधु सँवारा है
ऋतुओं में पावस प्यारा है।

नैश छवि

आओ मेरे साथ चलें हम नदी किनारे !

श्रम को आ कोई सुला गया
दिन-धंधा जैसे भुला गया
वह देखो नभ में कोई आ
कोटि-कोटि दीपक जला गया

विहँस रहे रजनी-गोदी में सुन्दर जगर-मगर तारे
आओ मेरे साथ चलें हम नदी किनारे !

यह देखो, वह रेत खो गई
सारी पृथ्वी एक हो गई
यह कोई माया सब को
सपनों की सरिता में डुबो गई
अभी-अभी नीलम-सी थी-
वह फ़ुनगी, लो, अब दूध हो गई

और तुम्हारे बालों को
यह कौन फेन में यों भिगो गई

ये परियाँ जादू की—ये उनके ही इन्द्रजाल सारे
आओ मेरे साथ चलें हम नदी किनारे !

छवि की परियाँ नाच रही हैं
सुख की कविता आँच रही हैं
किसके उर में गीत, सभी को—
पलकों में घुस जाँच रही हैं

सरिता की कल-कल में बजती उनकी पायल की झंकारें
आओ मेरे साथ चलें हम नदी किनारे !

शिशु सोये, सोई हैं माएँ
ऊँघ रहीं खूँटों पर गाएँ
सोई खगी नीड़ में, छौनों
को डैनों में खूब सटाये
सब बेसुध निश्चिन्त, क्योंकि
सब पर प्रभु का सनेह है छाये
जग सोया प्रभु जाग रहे
सब पर करुणा की छाँह पसारे

आओ मेरे साथ चलें हम नदी किनारे !

आशीर्वाद

मंगल आशीर्वाद तुम्हें !

इस नवीन नवजात वर्ष का शिशुओ ! आशीर्वाद तुम्हें !

नये गगन के नूतन रवि का
नयी सृष्टि की नूतन छवि का
नवयुग ज्योति-पर्व के चारण
नये भाव के नूतन कवि का

निखिल नई विभूतियों का हे शिशुओ ! आशीर्वाद तुम्हें !

चिर-वांछित सुख की आशा का
अमर शांति की अभिलाषा का
बोल न सकी युगों से जो
उस करुणा की पावन भाषा का

कोटि-कोटि गीले कंठों से शिशुओ ! आशीर्वाद तुम्हें !

जो मंगलमय उस प्रयास का
जो सुगंधमय उस बतास का
जो जग की कल्याण-कामना में
डूबा उस अश्रु-हास का

जन-मन के उल्लास-लास का शिशुओ ! आशीर्वाद तुम्हें !

आशीर्वाद तुम्हें स्वदेश का
सुर-सरिता हिमपति नगेश का
युग-युग संचित तप अशेष का

जन पैंतीस-कोटि का शिशुओ ! शत-शत आशीर्वाद तुम्हें ।

जन्माष्टमी के दिन

आज खेलने का दिन है माँ! मुझे न यह दिन खोने दे!
घिरती है तो घिरे बदरिया दुर्दिन है तो होने दे!!

आज बंद स्कूल, छुट्टियों की घड़ियाँ ये मनचाही
कसम कन्हैया की न आज मैं छूऊँगा कागज-स्याही

हरी घास की सेज सामने कितनी भली सुहानी है
इसे छोड़कर पढ़ूँ किताबें—माँ! यह तो नादानी है

बरस रहे नभ से मोती, झड़ता चाँदी का पानी है
यह दुनिया लगती जैसे रिमझिम की एक कहानी है

हफ्ते भर के उमस-भरे तन-मन को जरा भिंगोने दे

आज खेलने का दिन है माँ! मुझे न यह दिन खोने दे!
घिरती है तो घिरे बदरिया दुर्दिन है तो होने दे!!

आज कन्हैया का दिन माँ! तूने ही कही कहानी है
तब से मेरे रोम-रोम में जगी हविश मस्तानी है

ऊपर म कद्ब पर हूगा अग-अग फूला फूला

सच कहता हूँ माँ, न आज मैं डाँट-डपट सहनेवाला
कौन त्रिलोकी में नटखट नटवर को कुछ कहनेवाला

मास्टर भी तो क्या, न कंस भी मुझको आज डरायेगा
निर्भय रह माँ! आज नहीं कोई नृशंस रह पायेगा

तू बन जननि यशोदा मुझको कुँवर कन्हैया होने दे
आज खेलने का दिन है माँ! मुझे न यह दिन खोने दे!
घिरती है तो घिरे बदरिया दुर्दिन है तो होने दे!!

वीर बालक

बच्चो ! सुन लो, कथा एक बालक की अद्भुत लासानी
"रटिसबेन" पर जब फ्राँसीसी वीरों ने कमान तानी !
रटिसबेन से एक मील पर ढूह एक थी पथरीली
खड़ा उसी पर था नेपोलियन-आँखें कर नीली-पीली
गर्दन ऊँची किये, पैर छितराये हाथ फेंक पीछे—
देख रहा था रटिसबेन को दृष्टि डाल ऊपर-नीचे !
सोच रहा था वह कि 'आज मेरे ये उड़ते मनसूबे
हो जायेंगे धूलिसात् यदि थोड़ा भी हिचके-ऊबे—
मेरे वीर सिपाही'—इतने में टप-टप की धमक उठी
बन्दूकों की धुआँधार में जैसे बिजली चमक उठी
सर सर निकला घुड़सवार ज्यों कपड़े पर चलती कैंची
पहुँच ढूह पर ही उसने फिर घोड़े की लगाम खैंची !
हँसता हुआ कूद घोड़े से वह जमीन पर खड़ा हुआ
अरे, एक बालक यह तो, जो शेर सरीखा अड़ा हुआ !!

देखो, दोनों ओठ दबाए हैं इसने कैसे कसकर
कहीं खून भी जरा दीखता ?—किंतु जरा देखो सटकर !
गोली खा दो टूक हुई समझो यह छाती मर्दानी
रटिसबेन पर जब फ्रांसीसी वीरों ने कमान तानी

बोला वह बालक सगर्व—'सम्राट् हुआ फिर मनचाहा
रटिसबेन हो गया आपका—प्रभु की हुई दया आहा !
घूम रहे हैं दल-पति विजयी चौराहों—बाजारों में
झूम रहे हैं झंडे नगर-डगर में घर-दीवारों में

स्वयं आप भी शीघ्र नगर में जा देखें निज आँखों से
झंडे जो मैंने फहराये हैं अपने इन हाथों से
बाग-बाग सरदार खुशी से नाच उठीं उसकी आँखें
फिर उड़ चले हृदय के मनसूबे जम गईं नई पाँखें !

नाच उठीं आँखें-परन्तु छाई क्षण में फिर अँधियाली
घायल बच्चे को विलोक ज्यों दुखी खगी ममतावाली
व्याकुल बोला नेपोलियन—"तू घायल अरे चोट खाये"
किंतु बहादुर बालक का कैसे अभिमान सम्हल पाये

बोल उठा वह—"नहीं, आर्य्य ! मैं मारा गया विजय रण में"
और गिरा वह हँसते-हँसते भू पर मरा हुआ क्षण में
यह है विजय मरण पर, यह है एक कहानी कल्याणी
रटिसबेन पर जब फ्राँसीसी वीरों ने कमान तानी *

●

* अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि राबर्ट ब्राउनिंग की एक कविता का भावानुवाद ।

—केसरी

भाई-बहन

ऐसे भाई-बहन धन्य ऐसी जोड़ी अनहोनी
भाई माँ का ताज जवाहर लक्ष्मी बहन सलोनी !
वैभव के आनन्द-भवन में पली हुई सुकुमारी
बहन फूल की सेज पौढ़ने वाली राजदुलारी
भाई चमके हुए हिंद-माँ के मोती का पानी
वैभव के आनन्द-भवन का भाग्य-दीप नूरानी
सुखमा के दो फूल, स्नेह के पल्लव-वन में फूले
हास-लास के स्वप्न हिंडोले में परियों से झूले
किंतु एक दिन राज्य छोड़कर भाई बना भिखारी
जननी जन्मभूमि-मंदिर का पावन प्रेम-पुजारी
दीन-हीन चालीस कोटि में वह मशाल बन चमका
उसकी सिंह-गर्जना से प्रभुता का माथा ठनका !
और बहन भी चली छोड़ वैभव-विलास के सपने
चली कोकिला चंदन-मधुवन की, निदाघ में तपने

सुखमा के ये फूल आज काँटों में दमक रहे हैं
मलयज नहीं बवंडर में ये खिल-खिल गमक रहे हैं
भाई पौरुष-ज्वाल, बहन बन गई शक्ति-चिनगारी
इन जलनेवाले फूलों की लाख बार बलिहारी
दाता ! भारत के घर-घर में जनमें जोड़ी ऐसी
भाई वीर जवाहर बहन विजयलक्ष्मी ही जैसी

राजकुमार

उस दिन राजकुमार बहुत झुँझलाकर बोला माँ से
माँ, तू मुझको ठग न सकेगी अब केवल चकमा दे
सच कहता हूँ आज न मैं मानूँगा एक बहाना
आज चाँद लाना ही होगा-हाँ, होगा ही लाना,
मुस्काई माँ—पर कुमार की मुख-श्री थी कुम्हलाई
दिल की उमड़-घुमड़ आँखों की राह बरसने आई
बोला वह —"माँ, तू कहती है बाबूजी राजा हैं
राजमहल है ठाट-बाट शुहरत बाजा-गाजा है
धरती के मालिक हैं—उनके लिये न क्या हो सकता ?
उनके एक इशारे से वह चाँद न क्या आ सकता ?
और नहीं तो एक दूसरा चाँद न क्या बन सकता ?
एक सेर चाँदी से क्या ज्यादा कुछ उसमें लगता ?"
आँखों में आँसू मुख के प्राणों में सिहरन छाई
माँ के रोम-रोम में पुलकों की गंगा लहराई

बोली माँ—"बेटा, सच तेरे बाबूजी राजा हैं
राजमहल है ठाट-बाट शुहरत बाजा-गाजा है
सब कुछ है पर एक चाँद पर उनकी नहीं हुकूमत
और न कोई भी राजा दे सकता उसकी कीमत
वह त्रिभुवन के राजेश्वर का अमर पुत्र न्यारा है
राजा रंक फकीर सभी के प्राणों का प्यारा है
बेटा, प्रभु का न्याय यही है उनको सभी बराबर
ऊँच-नीच का भेद-भाव तो सिर्फ इसी धरती पर
इसीलिये तो क्या राजा के क्या गरीब के घर में—
एक रूप चाँदनी एक-सा चाँद अखिल अम्बर में

बाबा की दाढ़ी

बाबा की लम्बी दाढ़ी से ममता मेरी गाढ़ी
बाबा से भी अधिक मुझे भाती बाबा की दाढ़ी
पहले तो डर था कि कौन यह कुछ झाड़ी झुरमुट-सी
बाबा के गालों-होठों के इतने निकट विकट-सी

जाने इसमें छिपा कौन, काली छाया यह किसकी
इसीलिये देखते इसे आँखों में आती झपकी
अभी याद है चीख उठा मैं जब, बाबा ने चुपके
उस दिन उठा लिया अपनी गोदी में मुझे लपक के

आँखें मूँद लगा छट-पट करने मैं इसी गरज से
किसी तरह भागूँ दाढ़ी की खतरनाक सरहद से
किंतु अचानक लगा कि रेशम के अनगिन तारों से
उस दिन बाँध लिया मुझको दाढ़ी ने पुचकारों से

प्रथम-प्रथम परिचय की बेला-मैंने आँखें खोलीं
देखा बाबा की दाढ़ी तो एक प्यार की झोली
तब से बाबा की दाढ़ी से ममता मेरी गाढ़ी
बाबा से भी अधिक मुझे भाती बाबा की दाढ़ी।

अब तो हम दोनों बरसों के संगी बड़े उमंगी
बाबा बूढ़े हुए किंतु दाढ़ी यह खूब तरंगी
जो-जो चाहूँ खेल खेलना यह सब में साथी है
बनती यह अंकुश बाबा का सिर बनता हाथी है

या चाहूँ तो इसे पकड़ पंखे का काम चला लूँ
या राष्ट्रीय गीत गाता झंडे सा इसे उड़ा लूँ
ऊब-ऊब उठते हैं बहुधंधी बाबूजी-माँजी
किसको इतना सब्र कि सह ले मेरी, ऊधमबाजी

किंतु एक दाढ़ी न ऊबती मुझको सदा रिझाती
मेरी चटुल अँगुलियों पर वह थिरक-थिरक बल खाती
गरमी की सुनसान दुपहरी में जब सब सो जाते
घर-आँगन सब एक अजब बेहोशी में खो जाते

किंतु निगोड़ी नींद न मेरी आँखों में है आती
गरमी की लम्बी घड़ियाँ दुश्मन-सी मुझे सतातीं
मैं धीरे से खिसक चला जाता दाढ़ी के पास
बड़े ध्यान से वह सुनती मेरे दुख का इतिहास

फिर तो चलते हम दोनों के कितने खेल तमाशे
दाढ़ी में चलते मेरे ये हाथ 'सफर मैना'-से
कितनी सड़कें कितने पुल बनते गिरते जाते हैं
जिन पर मेरे मन के घोड़े आते हैं जाते हैं

किंतु एक गलती उस दिन हो गई बड़ी ही भारी
अपराधी मैं—निरपराध बिलकुल दाढ़ी बेचारी
मैंने ही सोचा कि जरा देखूँ बाबा के नथने
कितनी दूर गये हैं भीतर फिर चौड़े हैं कितने

इसीलिये मैंने दाढ़ी की रस्सी एक बनाई
किंतु इंच भर मुशकिल से वह भीतर घुसने पाई
तब तक क्रुद्ध भुजंगम-से नथने फुफकार उठे वे—
बाबा को आ गई छींक औचक फिर जाग उठे वे

मुझे देखकर हँसे किंतु दाढ़ी पर वे झुँझलाये
फिर सो गये खूब कस कर गर्दन से उसे दबाये
मेरी खता किन्तु दाढ़ी को दंड मिला जो भारी
उसके लिये जरा भी मुझसे क्रुद्ध न वह बेचारी

अब भी जब स्कूल किसी दिन जी न चाहता जाना
और मुझे बचने का कोई मिलता नहीं बहाना
दौड़ पकड़ लेता हूँ मैं कसकर बाबा की दाढ़ी
वे कहते-"लो, रहो यहीं, पर छोड़ो भी यह दाढ़ी।"

इसीलिये तो इस दाढ़ी से मेरी ममता गाढ़ी
बाबा से भी अधिक मुझे भाती बाबा की दाढ़ी।

आँधी में

बंद करूँ कि खोल दूँ खिड़की यह आँधी की वेला
'मत कीजिये बंद'—बोला मेरा सुरेन्द्र अलबेला
'देखूँ जरा खेलती कैसे हू-हू करती आँधी
देखूँ कैसे नभ को छू भू-बीच उछलती आँधी
खिड़की खोल देखिये तो कैसी यह छटा सुहानी
बंद कोठरी की गरमी से अच्छा आँधी-पानी.
ठीक कहा—यह उमड़-घुमड़ यह छटा बड़ी मस्तान

देखो वह पूरब के नभ में उमड़े बड़े बगूले
झूल रही जैसे आँधी चढ़कर विनाश के झूले
उठा ज्वार का ज्वार छोर अवनी-अंबर के डूबे
आसमान काँपा कि धूल के ऐसे हैं मनसूबे
चढ़ उनचास पवन के रथपर धूसर बाल बिखेरे
डोल रहा संहार सृष्टि पर आँखें लाल तरेरे

शंकित जीव-लोक कंपित-आतंकित नगर-बसेरे
ये कैसे चल रहे चौमुखी वज्र-समान थपेड़े
गिरे यहाँ तरु वहाँ गिरी दीवार-पगार घरेरे !
अब न खुली रहने दो खिड़की — यह छिपने की वेला
'जरा ठहरिये और'—मचल बोला सुरेन्द्र अलबेला
'वह देखिए सुदूर गगन में पंछी एक अकेला -
उड़ा जा रहा—और आप कहते छिपने की वेला
जरा देखिए तो यह गति यह छवि कैसी नूरानी
सच, सौ-सौ तूफानों से साहस की बड़ी रवानी
मुट्ठी भर की देह नये पल्लव-से पंख सलोने
वन का राजकुमार पौढ़नेवाला फूल-बिछौने
यह पंछी क्यों आज मरण से लड़ने चला अकेला
छिप न गया क्यों किसी विटप पर इस आँधी की वेला ?
जाने सिरजनहार !—किंतु खग यह चितचोर बना है
इस तम-पट पर खिंची एक बिजली की कोर बना है
एक थपेड़ा लगा कि आगे दो गज और बढ़ा है
मरण-शीश पर यह जीवन की जय की मौर चढ़ा है
रूई का फाहा स्वाहा-सा अंगारों में खेले
कैसे पुष्प शिरीष मेरु की चट्टानों को ठेले
जाने सिरजनहार कि कैसे यह मिट्टी का बंदा
तैर रहा संहार-धार में चंदा बना परिंदा
बल उठता है मोम चाहिये एक लगन-चिनगारी
चढ़े बवंडर पर पौरुष जो मैं उसपर बलिहारी'

———

बुद्धन काका

आज दशहरे का मेला—बुद्धन काका भी आए
और बहुत से कच्चे-बच्चे साथ-साथ वे लाए
कुछ जमीन पर कुछ कंधे पर बेटे-नाती-पोते
कुछ सीटियाँ बजाते-गाते कुछ हँसते कुछ रोते !

बुद्धन काका को बचपन से गुड़ की चाट लगी थी
मिला न उनको गुड़ जबसे यह शुरू हुई महँगी थी
और सख्त ऐसी काकी भी-कहती—"जीभ निगोड़ी
कहीं बुढ़ापे में न कराए यह तुमसे भी चोरी

इसीलिए कहती हूँ इसके वश में कभी न होना
नमक-मिले मट्ठे में क्या कुछ कम है स्वाद सलोना"
सहा किए काका काकी की बरसों तक मनमानी
किंतु दशहरे के दिन फिर वह जागी चाट पुरानी

एक रुपल्ली दे काकी ने कहा—"सुनोजी भोले !
बच-बच चलना, बुरी जगह होते हैं मेले-ठेले

सिर्फ आठ बच्चे हैं उनके लिए बहुत है काफी
कुछ खरीद लेना जलेबियाँ कुछ लड्डू कुछ बर्फी
वर्ष-पर्व है—खूब खिलाना इनको जो-जो भावे
देखो, साँझ समय ये बच्चे खूब चहकते आवें"

आज शहर की सड़क-सड़क पर बड़ी भीड़ है भारी
टूट पड़ी है आस-पास गाँवों की जनता सारी
बुद्धन काका चले जा रहे बच्चों को फुसलाते
'ठहरोजी, दर्शन के पहले नहीं मिठाई खाते'

सोच रहे वे भला एक रुपये से क्या होने को
फकत ऊँट के मुँह में जीरा-इससे क्या होने को?
सोच रहे बुद्धन काका बस ऐसा कोई ढब हो
अपना भी मुँह हो मीठा ऐसा कोई करतब हो

इतने में सामने मूर्त्ति देवी की पड़ी दिखाई
बोले—'शीश झुका लो बच्चो! ये हैं दुर्गा माई'
आँख फाड़ बच्चे निहारते—अरे रूप यह कैसा
और पास में यह तो कोई बड़ा भयानक भैंसा

बोले—"काका, ओ काका, यह कैसी दुर्गा माई
यह तो जैसे भैंसे से जमकर कर रहीं लड़ाई",
मुसकाए बुद्धन काका, बोले—"लो, सुनो कहानी
गुड़ से बड़ी प्रीति रखती हैं यह दुर्गा-महरानी

इसीलिए गन्ने की खेती में रमता मन इनका
चिढ़ जाती हैं, यदि कोई तोड़े गन्ने का तिनका
किंतु एक भैंसे ने उनका उपजा खेत उजाड़ा
इसीलिए तो देवी ने उसको यों पकड़ पछाड़ा

सच मानो देवी को गुड़ का स्वाद बहुत भाता है,
ये उसपर होतीं प्रसन्न जो इस दिन गुड़ खाता है।
सत्य बात बुद्धनकाका की असर कर गई भारी
अब क्या था—गुड़ ही खरीदने की हो गई तयारी
लिया डबल दो सेर एक रुपये में गुड़ मन चाहा
बाँध चले गमछी में काका हँसते हाहा…हाहा!
एक कुँए पर बैठ कहा काका ने—"बच्चो, आओ
देखो कितना अच्छा गुड़ है जितना चाहो खाओ"
आध सेर भी गुड़ न किंतु आठों ने मिलकर खाया
बाकी डेढ़ सेर गुड़ बस काका के पेट समाया!
एक डोल पानी पीकर काका डकराते बोले—
"भूल-चूक सब माफ करो—जय दुर्गे! जय बमभोले!"

कुँवर सिंह का सपना

(एक पद्यबद्ध लघु रूपक)

१८५७ का तूफानी जमाना !

शिवपुर के समीप गंगा में तिरती एक नाव पर तीन व्यक्ति ! मशहूर क्रान्ति-वीर सरदार कुँवर सिंह, उनका अनन्य अनुचर एवं साथी अर्जुन सिंह, एवं संन्यासी-वेश में क्रांतिकारियों का एक गुप्तचर !

अर्जुन सिंह—सूरज डूब रहा है माँझी ! जल्दी नाव चलाओ
देखो संध्या के पहले उस पार हमें पहुँचाओ
और जरा सरदार ! आप इस बीच तनिक सुस्ता लें
माँ गंगा के दरस-परस से जी की तपिश मिटा लें
डटे हुए उस पार आपके नौजवान बलिदानी
भभक रही जिनके प्राणों में ज्वालामुखी-जवानी
रक्षित है उनके हाथों सरदार ! आपका पानी
निश्चय हम ले लेंगे कल जगदीशपूर रजधानी

कुँवर सिंह—ठीक कहा तुमने—उचित उस पार देश का पानी
मुक्ति हेतु जिसके तरुणों में जगा जोश बलिदानी
किंतु कहो संन्यासी तुम क्या समाचार लाए हो
दिल्ली, कानपूर, झाँसी से क्या होते आए हो ?

संन्यासी—समाचार क्या कहूँ—बुझी जा रही क्रांति-चिनगारी
और पुनः पद-दलित हो रही भारत भूमि दुलारी
बुझी मुक्ति की वह मशाल लक्ष्मीबाई मरदानी !
शुरू हो गई फिर फिरंगियों की अनीति मनमानी !!
किंतु अरे उस पार खड़ा बन्दूक कौन वह ताने
बचो, बचो सरदार ! कदाचित तुम्हीं लक्ष्य, क्या जानें!
हाय ! तुम्हें ही लगी वृद्ध सरदार ! शत्रु की गोली
रहे तीन हम किंतु सिंह तुमने ही आफत झेली
अर्जुन ! अर्जुन ! हाथ दाहिना गोली चीर गई है
अरे सँभालो—कुँवर सिंह को भारी पीर हुई है !

कुँवर सिंह—'कुँवर सिंह को पीर ?' कहा तुमने यह क्या संन्यासी ?
अरे पीर संगिनी हमारी हम चिर मुक्ति-विलासी !
दुख परन्तु दाहिना हाथ अब काम कौन आवेगा !
यह घायल लाचार न जब तलवार पकड़ पावेगा
इसीलिए देखो अर्जुन ! मैं इसे काट देता हूँ
मुक्ति-यज्ञ का बलि-प्रसाद—मैं इसे बाँट देता हूँ

अर्जुन—दादा, दादा ! अरे आपने इसे काट ही डाला
हाय, देश की सुख-आशा पर आज पड़ गया पाला
टूट गई यह बाँह कि जो बिजली की लिए रवानी
सबल फिरंगी-दल को कर देती थी पानी-पानी

समा गई तुझमें गंगे ! जौहर की एक निशानी
एक हिंद के पुरुष सिंह की विजयी भुजा पुरानी
किंतु क्रांति की चिनगारी बुझने से कौन बचावे ?
दादा, बोलो, इस भुज-वलि पर हम रोवें या गावें !

कुँवर सिंह—रोते हैं का-पुरुष, वीर तो हँस-हँस वलि चढ़ जाते
भूमि पूजती उन्हें उछल जो चाँद पकड़ने जाते
मैं कहता हूँ सुनो—प्राण ये मेरे चिर विश्वासी
पराधीन अब रह न सकेंगे आर्य्य भूमि के वासी
क्या समझे हो तुम कि देश की वीर वाहिनी हारी ?
और कुचल दी गई क्रांति की लाल-लाल चिनगारी !
हो सकता झंझा आए—दो चार फूल झड़ जाएँ
किंतु क्रांति की अमर वेलि संभव न कभी मुरझाए !
बुझी मुक्ति की वह मशाल प्यारी झाँसी की रानी
और देखता हूँ मेरी अपनी भी खतम कहानी
किंतु न होगी खतम तार-सी हरदम चढ़ी जवानी
और मुक्ति के मस्तानों की कदम-कदम कुर्बानी
सुनो, प्राण चाहते जिसे वह सपना देख रहा मैं
नातिदूर भारत भविष्य का अपना देखा रहा मैं
देख रहा मैं मातृभूमि निर्बंध सबल स्वाधीना
चमक रही जैसे कि विश्व की मुँदरी मध्य नगीना
शस्यशालिनी रत्नमालिनी हिमकिरीटिनी प्यारी
उसकी खेत-रेत की छविपर रवि-शशि है बलिहारी
बहु सन्तानवती माता वह अमर सपूतों-वाली
निखिल विश्व में फैली उसकी नव प्रभात-सी लाली
देख रहा मैं विजय-वैजयंती भारत की ऊँची

जिसके नीचे शांति पा रही यह मेदिनी समूची
सुख समृद्धि विज्ञान-कला की सिद्धि-वृद्धि-परिपूर्णा
देख रहा मैं भारत की भावी छवि कंचन-वर्णा
किंतु हाय ! दुख मुझे न मैं उस दिन भूतल में हूँगा
जन्म-भूमि के चरणों में उस दिन दो फूल न दूँगा
जिस दिन माँ के मुक्ति - पर्व में वंदनवार सजेंगे
प्राण-प्राण में नव उमंग के तार, सितार बजेंगे
किन्तु अटल विश्वास एक यह मुझे बड़ा सुखदाई
सुन लो तुम साथियों ! और यह सुन लें गंगा-माई
जब नूतन स्वतंत्र भारत के कवि गायक अभिमानी
समुद लिखेंगे बलिदानों की मस्ती भरी कहानी
वीर- वंदना में स्वर उनके जब अम्बर छू लेंगे
निश्चय उस दिन कुँवर सिंह को वे न कभी भूलेंगे
याद करेंगे वे कि एक अस्सी बरसों का बूढ़ा
मातृभूमि की मुक्ति के लिये अंगरेजों से जूझा
ऐसा करतब किया कि हिम्मत फिरंगियों की टूटी
टूट गई जब बाँह तभी तलवार हाथ से छूटी
किंतु सुनो, उस पार मुक्ति का लहरा रहा तराना
यह कोई गा रहा देश का सैदाई दीवाना

भूतनाथ

मत पूछिये कि कैसे-कैसे करतब उनके न्यारे
वे नौकर सिरताज हमारे भूतनाथ जी प्यारे

भूतनाथ यह नाम आपका ठीक सोलहो आने
कुम्भकर्ण की याद देखकर उनको लगती आने

उन्हें देख लीजिये रात में फिर न नींद आयेगी
सारी लंका की छवि आँखों में आ घिर जायेगी

यों तो जामुन और कोयला भी होता है काला
भूतनाथ का रंग किन्तु इन दोनों से भी आला

क्या तेलिया-पखान और क्या है स्याही की बोतल
भूतनाथ के रंग-रूप का कालापन भी कायल

और पेट भी भाँति-भाँति के होते हैं मानव के
कुछ कुम्हड़े, कुज तारबूज से, कुछ हों जैसे मटके

किन्तु हमारे भूतनाथ का पेट अजीब अनोखा
उसे देखकर भरे भाँड़ का हो जाता है धोखा

किन्तु न ज्यादा भूतनाथ के भोजन में अधिकाई
तीन सेर से बेशी रोटी उनने कभी न खाई

हाँ! जब मिलता उन्हें भात में दाल और तरकारी
तब तो उनसे हार मानती बटलोई बेचारी

पक्का चार सेर चावल जब डाल पेट के भीतर
भूतनाथ जी सात बार सुख से डकारते डटकर

उस डकार को सुनकर मैं तो काँप-काँप जाता हूँ
कल के लिये न चावल होगा—तुरत भाँप जाता हूँ

सुनते हैं सोनेवालों में वन-बिड़ाल है नामी
किन्तु हमारे भूतनाथ का वह भी करे गुलामी

दोनों टाँग पसार चित्त हो जब वे सो जाते हैं
तब तो वे आदमी न, बिलकुल अजगर हो जाते हैं

और नहीं ऐसे नथने हमने देखे हैं भाई!
उनमें बजते सभी साज ढोलक-मृदंग-शहनाई!!

यह न समझिये भूतनाथ जी निपट गँवार निरक्षर
कुश्ती और गान का वे करते अभ्यास बराबर

उस दिन जो आवाज गधे की-सी आई फौलादी
सुना कि वह तो भूतनाथ जी का स्वर था उस्तादी!

और न साहस तथा पराक्रम भूतनाथ में कम है
इससे क्या यदि वे बकरी से भी डरते हरदम हैं!

कहते वे-"मालिक ! कड़वी बातें मैं सह न सकूँगा
बोलेंगे यदि आप जोर से तब तो मैं रो दूँगा !"

एक बड़ी दिलचस्प कहानी उनने मुझे सुनाई
तबसे मैं उनके साहस की करता सदा बड़ाई

"पाँच बरस पहले मालिक ! जब मैं था बीस बरस का
नई जवानी थी—कुश्ती का खूब लगा था चसका

एक रात—उस रात बाप रे ! कैसी थी अँधियाली
भूत-प्रेत सी लगती थीं घर की दीवारें काली

झूठ कहूँ क्यों मालिक ! ऐसी रातें मुझे न भातीं
दिल धक्-धक् करने लगता, कँप-कँपी मुझे लग जाती

इसीलिये उस रात पास मैं माँ के ही सोया था—
पहलवान जो ठहरा—गाढ़ी निद्रा में खोया था—

आधी रात हुई होगी जब, हुआ शोरगुल जारी—
'चोर-चोर' सब थे पुकारते मुझे हुआ डर भारी

तुरत कूद मैं लेट गया खटिये के नीचे भूपर
और डाल ली एक चटाई लम्बी अपने ऊपर

चोर हुए चम्पत—परन्तु माँ मुझे खोज कर हारी
'चोर ले गये भूतनाथ को'—रोती रही बिचारी"

सच, मुझको अफसोस हुआ जब भूतनाथ जी चले गये !
हलाँ कि सबने कहा खुशी से—पेटू पाँड़े भले गये !!

जय हो हिंद देश की

ऐसी अनुपम है अपने भारत की गौरव-गाथा
जिसको सुनकर झुक जाता है भू-मंडल का माथा
जब कि युगों से बर्बरता का जग में नृत्य चला है
एक हिंद की दीवट पर करुणा का दीप जला है !

साक्षी है इतिहास-हिंद को युद्ध नहीं भाता है
किन्तु आन के लिये जान देना इसको आता है !
साक्षी है इतिहास—कि हमने तभी कृपाण उठाया
जब कि देश की इज्जत पर—अस्मत पर संकट आया !!
प्रिय स्वदेश के लिए हमारी जग-जाहिर कुर्बानी
और हमारी तलवारों का जग-जाहिर है पानी

किंतु जंगबाजी भारत के दिल में कभी न आई
यह ऋषियों का देश पूज्य बापू का है सैदाई
यहाँ अहिंसा और प्रेम की बुलबुल सुख से गाती
जबकि छिल रही द्वेष-घृणा से इस दुनिया की छाती

यहाँ आशियाना बुलबुल का बाज यहाँ क्यों आए
यह गाँधी का देश शांति-अमृत में सदा नहाए
हिंदू-मुस्लिम-जैन-पारसी-सिख सब भाई-भाई
एक चमन के विविध रंगवाले फूलों की नाईं
जय हो हिंद देश की, हिंदू-मुसलमान की जय हो
सुखी मजूर-किसान देश के सब इन्सान अभय हों